ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-5* June- 2021
Innovation The Research Concept

लोकतन्त्रात्मक शासन प्रणाली और महिला प्रतिनिधित्व
Democratic Governance and Women's Representation

Paper Submission: 15/06/2021, Date of Acceptance: 25/06/201, Date of Publication: 26/06/2021

शालिनी गुप्ता
प्रवक्ता,
इतिहास विभाग,
जवाहर लाल नेहरू पोस्ट मेमोरियल पी0जी0 कालेज,
बाराबंकी, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

लोकतंत्र एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें नागरिक अपने सामाजिक समुदायों के लिये नीति–निर्माण की प्रक्रिया में भाग लेते हैं। वास्तव में यह नीति–निर्माण की प्रक्रिया समाज के समस्त सदस्यों की सामान्य सहभागिता पर आधारित होती है। जहाँ पर सामान्य सहभागिता के आधार पर नीति–निर्माण की व्यवस्था होती है उसे हम वास्तव में स्वशासित समूह की संज्ञा में रख सकते हैं।

Democracy is a system in which citizens participate in the process of policy-making for their social communities. In fact, this policy-making process is based on the general participation of all the members of the society. Where there is a system of policy-making on the basis of general participation, we can actually keep it in the name of self-governing group.

मुख्य शब्द : शास्त्रीय सिद्धान्त, अनुक्रमणिका, सहभागी लोकतन्त्र, वामपंथी लीगल डेमोक्रेसी, प्रतीकात्मक।
Classical Theory, Index, Participatory Democracy, Leftist Legal Democracy, Symbolic.

प्रस्तावना

लोकतंत्र एक बड़ी व्यापक एवं विस्तृत संकल्पना है किन्तु लोकतंत्र के संदर्भ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि नीति–निर्माण की प्रक्रिया में समस्त नागरिकों को बिना किसी भेद–भाव के समान भागीदारी का अवसर प्राप्त हो। लोकतंत्र का चाहे शास्त्रीय सिद्धान्त हो या फिर आधुनिक, मुख्य आत्मा समान भागीदारी पर ही आधारित होती है। लोकतंत्र को कई विद्वानों ने अलग–अलग दृष्टिकोण से परिभाषित करने का प्रयत्न किया है किन्तु सभी परिभाषाओं का निष्कर्ष यह निकलकर आता है कि सम्पूर्ण प्रजातंत्र में कोई भी व्यक्ति यह नहीं कह सकता है कि उसे सुनने का अवसर नहीं दिया गया। महिला प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में यही बात दृष्टिगोचर होती है।

अध्ययन का उद्देश्य

लोकतंत्र के अनेक रूपों में ‘राजनीतिक लोकतंत्र’ सभी नागरिकों स्त्री व पुरूष दोनों को ‘प्रतिष्ठा एवं अवसर की समता’ तथा ‘कानून के समान संरक्षण’ की सुनिश्चितता प्रदान करता है। यह समस्त नागरिकों को समान सहभागिता का अवसर भी प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त, यदि हम संयुक्त राष्ट्र मानव विकास की अनुक्रमणिका, को देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली के अन्तर्गत सरकारी नीति–निर्माण निकायों में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता तथा उनकी आर्थिक सहभागिता से उनका सशक्तिकरण तथा विकास सम्भव है।

विषय विस्तार

राजनीतिक सहभागिता प्रत्येक प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था का अनिवार्य संघटक है। प्रजातंत्रीय व्यवस्थाओं में यह अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें नागरिकों से सुनिश्चित भागीदारी की आशा की जाती है। शासन का स्वरूप चाहे जो कुछ भी हो, सत्ताधारी यह चाहता है कि जनसाधारण को राज्य के मामलों में राजनीतिक सहभागिता के लिये प्रेरित किया जाय ताकि राजनीतिक सत्ता सबल बन सके। साथ ही साथ, राजनीतिक व्यवस्था में भी स्थायित्व एवं निरन्तरता बनायी रखी जा सके। अगर किसी राजनीतिक व्यवस्था एवं समाज में अधिकांश जनता को राजनीतिक सहभागिता का अवसर नहीं दिया जाता है या इससे वंचित रखा जाता है तो उस समाज एवं राज्य व्यवस्था में विस्फोट (क्रान्ति) की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

इसके अतिरिक्त सी0बी0 मैक्फर्सन' ने अपनी राजनीतिक सहभागिता की परिकल्पना में 'लोकतंत्र के सहभागी मॉडल' पर लोकतंत्र के विषय में अपने विचार रखे है। किन्तु 'सहभागी लोकतंत्र' की संकल्पना ग्रीक राजनीतिक चिन्तन से लेकर आधुनिक राजनीतिक चिन्तन की कई महत्वपूर्ण संकल्पनाओं से बड़ी घनिष्ठता के साथ जुड़ा हुआ है। पिछले 200 साल में लोकतंत्र के विभिन्न सिद्धान्तों की मूल धारणा यह रही है कि सरकार की उचित व्यवस्था वह है जो जनसाधारण को राज्य के कार्यो में भाग लेने का अवसर प्रदान करती है जहाँ निश्चित अवधि के बाद चुनाव में मत देते का अवसर लोकतंत्र की न्यूनतम शर्त है। वहीं 'सहभागी लोकतंत्र' के विचारकों का कहना है कि राजनीतिक भागीदारी के व्यापक अवसर एवं विभिन्न स्वरूप ही वास्तव में लोकतंत्र का सार है। सहभागिता सिद्धान्त जनता की भागीदारी को एक आदर्श और एक व्यावहारिक आवश्यकता दोनों दृष्टिकोण से न्यायोचित ठहराता है।[1] 'सहभागी लोकतंत्र' शब्दावली का प्रयोग ग्रीक राज्यों से लेकर मार्क्सवादी परम्परा तक लोकतंत्र के कई मॉडलों के साथ प्रयुक्त किया जाता रहा है तथापि जिस 'सहभागी लोकतंत्र' के सिद्धान्त की बात हम यहाँ कर रहे हैं, यह लोकतंत्र का नया मॉडल है, जिसकी उत्पत्ति का श्रेय 1960 के बाद कुछ वामपंथी (Leftist) लेखकों को जाता है। यह सिद्धान्त वामपंथी विचारधारा के अन्तर्गत चल रहे चर्चाओं, लोकतंत्र के उदारवादी तथा मार्क्सवादी सिद्धान्तों के अधूरेपन तथा 1960 के बाद यूरोप और अमेरिका में उभरी राजनैतिक उथल–पुथल एवं विद्यार्थी आन्दोलनों के प्रयत्नों का मिला–जुला परिणाम है। लोकतंत्र के इस मॉडल में कई लेखकों का योगदान है, परन्तु मुख्यतः इसे तीन लेखकों के साथ जोड़ा जाता है। ये है; सी0बी0 मैक्फर्सन, कैरोल पैटमेन तथा पोलान्जे। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह सिद्धान्त राबर्ट नॉजिक द्वारा प्रतिपादित 'लीगल डेमोक्रेसी' के विरोध में स्थापित किया गया। इस प्रकार सहभागी लोकतंत्र का विकास लोकतंत्र के विशिष्टवर्गीय और बहुलवादी सिद्धान्तों के विरूद्ध प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप हुआ। कुल मिलाकर सहभागी लोकतंत्र परम्परागत उदारवादी विचार को स्वीकार करते हुये कहता है कि लोकतंत्र केवल सरकार का ही स्वरूप नही है। बल्कि आत्मविकास के समान अधिकार का एक साधन भी है। यह विकास केवल सहयोगी समाज में ही सम्भव हो सकता है–एक ऐसा समाज जो सामूहिक समस्याओं को ध्यान में रखता है और राजनीतिक दृष्टिकोण से ऐसे सक्रिय नागरिक समूह का निर्माण करता है जो शासन प्रक्रिया में निरन्तर भाग लेते है। यह समाज की महत्वपूर्ण संस्थाओं में नागरिकों की प्रत्यक्ष भागीदारी में विश्वास करता है, राजनीतिक दलों को और अधिक उत्तरदायी एवं खुला बनाना चाहता है तथा एक ऐसी उन्मुक्त संस्थात्मक व्यवस्था की सुरक्षा प्रदान करना चाहता है जिसमें भागीदारी के नये स्वरूपों का प्रयोग सम्भव हो सके।[2]

सहभागिता की आवश्यकता एवं निहितार्थ

उपरोक्त समस्त विश्लेषण के आधार पर 'सहभागी लोकतंत्र' का अर्थ है कि नीति–निर्माण प्रक्रिया में जनसाधारण की भागीदारी। नकारात्मक उदारवाद के प्रारम्भिक लेखक जे0एस0 मिल ने इस भागीदारी को दो आधारों पर न्यायसंगत ठहराया था–क–यह साधारण जनता को शासकों की तानाशाही से बचाती है। ख–यह सम्पूर्ण मानवजाति के विकास एवं उन्नति का साधन है।

ये विशिष्टवर्गीय तथा बहुलवादी सिद्धान्त थे जिन्होंने व्यक्ति की भागीदारी को हतोत्साहित किया। वास्तव में, सहभागी लोकतंत्र इस भागीदारी को वापस लाना चाहता है। कैरोल पैटमैन[3] के अनुसार आज के लोकतंत्रों में स्वतंत्र और समान व्यक्ति मिलना दुष्कर हो गया है। अधिकारों का औपचारिक से प्रदान किया जाना कोई महत्व नहीं रखता यदि उन्हें वास्तविक स्तर पर व्यावहारिता में प्रयोग में न लाया जा सके। स्वतंत्रता के अधिकार को केवल उन वास्तविक नागरिक स्वतंत्रतताओं और अवसरों के सन्दर्भ में आँका जा सकता है जो व्यक्ति को नागरिक और राजनीतिक जीवन में सक्रिय तौर पर भाग लेने के लिये उपलब्ध होते हैं। रूसों और मिल के विचारों से प्रेरणा लेते हुए पैटमैन लिखती है कि सहभागी लोकतंत्र मानवीय विकास की वृद्धि करता है, राजनीतिक कार्यकुशलता को बढ़ाता है, शासकों एवं शासितों के अलगाव को कम करता है, सामूहिक समस्याओं के बारे में चिन्तित रहता है तथा ऐसे सक्रिय नागरिक समूह उत्पन्न करता है जो सरकार के कार्यो में हिस्सा लेने के योग्य होते है। इसी तरह मैक्फर्सन का भी यह तर्क है कि व्यक्ति की स्वतंत्रता तभी चरितार्थ हो सकती है यदि उसे राज्य के कार्यो में प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने का अवसर दिया जाय। इसके साथ ही 'सहभागी लोकतंत्र' के विषय में लिखते हुये उसका विचार है कि सहभागी व्यवस्था समाज में सभी प्रकार की असमानताओं को समाप्त कर देगी, परन्तु 'निम्न सहभागिता' तथा 'सामाजिक असमानता' आपस में इतने जुड़े हुये है कि मानव समाज को अधिक सहभागी राजनीतिक व्यवस्था की आवश्यकता उनका विश्वास है कि अच्छे समाज के निर्माण के लिये उसमें रहने वाले लोगों की जागरूकता तथा सक्रिय सहभागिता का होना आवश्यक है। वस्तुतः मैक्फर्सन ने वर्तमान उदारवादी लोकतंत्र के नैतिक पक्षों का गहन अवलोकन करने के पश्चात् एक बार पुनः सहभागिता का मुद्दा उठाया है, जो लोकतांत्रिक जीवन तथा राज्य की सफलता की कुंजी है।[4]

सहभागिता का एक अन्य अर्थ यह भी है कि यह सीखने की एक प्रक्रिया है। सहभागिता वास्तव में व्यक्ति की सोच को परिवर्तित कर देती है। यह लोगों को सच्चे अर्थो में सामाजिक बनाकर उनमें नये विश्वास, आस्था, दृष्टिकोण और मूल्यों की स्थापना करती है। इसी सन्दर्भ में कुक और मोरगन के अनुसार, सहभागिता राजनीतिक कार्यकुशलता को ही बढ़ाती है। सहभागिता के माध्यम से निर्णय–निर्माण में यह परिवर्तन वास्तविक सन्दर्भो में उसके असहायपन पर विजय पाने में सहायक सिद्ध हो सकता है। सहभागिता का एक अन्य लाभ यह भी है कि राजनीतिक व्यवस्था के लिये इससे बेहतर निर्णय लिये जा सकते है। संक्षेप में लोकतंत्र का सार सहभागिता में है, यह सत्य है। जनसाधारण को निर्णय–निर्माण से जोड़े बिना लोकतंत्र व्यर्थ है।

ठीक इसी प्रकार प्रबल उदारवादी परम्परा के अनुसार राज्य के हस्तक्षेप से मुक्त विश्व एक गैर–राजनीतिक विश्व है तथा महिला स्वाभाविक रूप से ऐसे विश्व में अपनी जगह ढूँढ़ लेगी, फिर भी राजनैतिक एवं सार्वजनिक जीवन में महिलाों की स्थिति पूर्ण रूप से उपेक्षित है। जे0एस0 मिल इस सन्दर्भ की कठोर आलोचना करते हुये कहते हैं कि पुरूषों और महिलाओं की कानूनी, राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था में पूर्ण समानता ही मानव–स्वातंत्र्य तथा लोकतांत्रिक जीवन के लिये कुशल परिस्थितियों का निर्माण कर सकती है।[5] इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज एवं राज्य के पितृसत्तात्मक ढ़ाँचे के विरूद्ध अनेक उदारवादी सिद्धान्तों में मिल का मानना है कि महिलाओं के उद्धार के बिना मानवता का उद्धार नहीं किया जा सकता।

महिला अधिकारों के विषय में मिल के प्रारम्भिक विचारों को उपयोगितावादी परम्परा से प्रेरणा मिली है। मिल की पुस्तक 'महिलाओं की पराधीनता'[6] में महिलाओं के दमन के विषय में महत्वपूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। मिल के विचार वास्तव में उसी दार्शनिकता का महत्वपूर्ण अंग है। महिलाओं के सम्बन्ध में उसके विचार मूलतः स्वतंत्रता, न्याय तथा चयन के अधिकार से जुड़े हैं। दूसरे शब्दों में, महिलाओं का उद्धार मिल की दार्शनिकता का केन्द्र बिन्दु है। इस दृष्टिकोण से मिल के मतानुसार, इस लक्ष्य की प्राप्ति पुरूष एवं स्त्री अर्थात् सम्पूर्ण मानवता की नैतिक तथा बौद्धिक क्षमताओं के पूर्ण विकास के द्वारा ही सम्भव है। असमानता अपने आप में गलत है तथा यह मानव के विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है अर्थात् महिलाओं का दमन एक सन्दर्भ में मानव के विकास की सबसे बड़ी बाधा है। श्रम के क्षेत्र में लैंगिक भेदभाव भी पुरूष एवं स्त्री के चरित्र का आंशिक एवं एकांगी विकास है। इस लैंगिक भेदभाव के कारण समाज प्रतिभा के बड़े भाग से वंचित हो जाता है। यदि महिलाओं को भी पुरूषों के समान अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर मिले तो मानवता की उच्च सेवा के लिये 'गुणात्मक मानव संसाधनों'; के व्यापक स्तर को प्राप्त किया जा सकता है।

मिल के अनुसार स्वतंत्रता एवं लोकतंत्र से ही मानव उत्कर्ष सम्भव है। बौद्धिक उन्मुक्ति तथा स्वतंत्र निर्णय के विकास के लिये विचार, अभिव्यक्ति तथा कार्यो की स्वतंत्रता आवश्यक शर्त है। यह मनुष्य की तर्कशक्ति के निर्माण में सहायक है और जैसा कि हम जानते है कि स्वतंत्रता और तर्कशक्ति दोनों के पहलुओं को पूर्णरूप से नहीं समझा जा सकेगा......**''यदि महिलाओं का संघर्ष सामान्य राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक संघर्ष से अलग रह गया, तो उनके आन्दोलन को अधिक लाभ एवं शक्ति, सुदृढ़ता नहीं मिलेगी और यह केवल उच्च वर्ग की महिलाओं तक ही सीमित रह जायेगें।''**

तालिका–1

विभिन्न चुनावों में मतदाताओं की संख्या व मतदान प्रतिशत का लैगिंक विभाजन

चुनाव वर्ष	मतदाताओं की कुल संख्या मिलियन में			मतदान प्रतिशत		
	महिला	पुरुष	कुल योग	महिला	पुरुष	कुल योग
1952	उ0न0	उ0न0	173.2	उ0न0	उ0न0	61.2
1957	उ0न0	उ0न0	193.7	उ0न0	उ0न0	62.2
1962	102.4	113.9	216.3	46.6	62.0	55.0
1967	119.4	129.6	249.0	55.5	66.7	61.3
1971	उ0न0	उ0न0	274.1	उ0न0	उ0न0	55.3
1977	154.2	167.0	321.2	54.9	65.6	60.5
1980	170.3	185.2	355.5	51.2	62.2	56.9
1984	192.3	208.0	400.3	59.2	68.4	64.0
1989	236.9	262.0	498.9	57.3	66.1	61.9
1991	234.5	261.8	498.3	51.4	61.6	56.7
1996	282.8	309.8	592.6	53.4	62.1	57.9
1998	289.2	316.7	605.9	57.9	65.7	61.9
1999	295.7	323.8	619.9	55.6	63.9	59.9
2004	321.9	340.5	671.4	53.3	61.7	57.6

स्रोत–निर्वाचन आयोग, भारत सरकार, नई दिल्ली के आँकड़े।

चुनाव सम्बन्धी आँकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि विभिन्न लोकसभा चुनावों में महिला मतदाताओं की संख्या में क्रमशः वृद्धि की सामान्य प्रवृत्ति दिखाई दी है। प्रथम व द्वितीय लोकसभा चुनाव के मतदाताओं का लैगिंक विभाजन उपलब्ध नहीं है। तृतीय लोकसभा चुनाव में जहाँ महिला मतदाताओं का प्रतिशत 46.6 था वहीं 1967 में बढ़कर यह प्रतिशत 55.5 हो गया। उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार महिला मतदाताओं का उच्चतम प्रतिशत (59.2) 1984 के चुनावों में रहा। आँकड़ों से स्पष्ट है कि लगभग सभी चुनावों में 50 प्रतिशत से अधिक महिलाओं ने मतदाता के रूप में सहभागिता की है तथा यह प्रतिशत 55, 57 व 59 तक का भी रहा है, परन्तु यहाँ यह स्पष्ट करना भी उचित होगा कि इस रूप में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता हमेशा पुरूषों से कम रहीं है तथा सभी चुनावों में महिला व पुरूषों के मध्य यह अंतर 8 से 16 प्रतिशत तक का रहा है।[7]

महिला एवं राजनीतिक दल

आम चुनावों में मतदान के रूप में सहभागिता के अतिरिक्त राजनीतिक दलों में महिला सहभागिता एक महत्वपूर्ण विषय है। प्रत्येक राजनीतिक दल चुनाव के

समय अपने चुनावी घोषणाओं में महिलाओं के लिये एक–तिहाई सीटें रखने की घोषणा तो करते हैं, परन्तु यह सिर्फ घोषणा तक ही सीमित होकर रह जाता है। कोई भी पार्टी अभी तक इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकी। अनेक अध्ययनों से यह बात भी स्पष्ट हुयी है कि हाल के महिला दशकों से पूर्व राजनीतिक दलों के अभियानों या रैलियों में महिलाओं से सम्बन्धित मुद्दे दृष्टिगोचर नहीं होते थे। परन्तु अंतिम कुछ दशकों में राजनीतिक पार्टियों ने विकास की विभिन्न प्रक्रियाओं के द्वारा एवं विशेषतः महिला समूहों के दबावों के फलस्वरूप महिलाओं से सम्बन्धित समस्याओं पर ध्यान देना शुरू किया है। विभिन्न राजनीतिक दल अपने चुनावी घोषणा पत्रों में महिलाओं से उनकी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्तरों पर सहभागिता हेतु सभी अवसर प्रदान करने का वायदा करते हैं। इसके बाद भी राजनीतिक दलों का इतिहास इस दिशा में सक्रिय प्रयास हेतु बहुत ही दयनीय है। किसी विश्वस्त आँकड़ों की अनुपलब्धता के कारण फिर भी यह पूर्णतया आश्वस्त होकर कहा जा सकता है कि महिलाओं की राजनीतिक दलों में सदस्यता उनके पूरी सदस्यता का 10 से 12 प्रतिशत ही है। राजनीतिक दल बहुत ही मुश्किल से महिलाओं को सत्ता में रखने के लिये सराहनीय प्रयास करते हैं। उदाहरण के लिये, आजादी के पश्चात कांग्रेस (1) में इंदिरा गाँधी एक मात्र महिला अध्यक्ष थी एवं उन्होंने कहा था कि 'महिलाओं का राजनीतिक दलों एवं एक नये समाज को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका होती है, इसके बाद भी महिलायें निर्णय–निर्माण प्रक्रिया के स्तर पर अपनी सशक्त भूमिका नहीं बना पायी है।[8]

यद्यपि आज महिलाएं देश के शीर्ष पदों पर विद्यमान है, परन्तु इनमें से अधिकांशतः अपनी सशक्त राजनीकि पृष्ठभूमि के कारण सत्ता में आयी। राजनीतिक दलों की संरचना व एजेण्डा चूंकि मुख्यतः पुरूष–परिप्रेक्ष्य में ही निर्धारित होता है, अतः स्वयं के बूते राजनीति में सफलता प्राप्त करने वाली महिलाओं की संख्या नगण्य ही दिखायी देती है। ये महिलाएं राजनीतिक दलों में अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वाह तो कर रही है, परन्तु उनमें से अधिकांश की भूमिका प्रतीकात्मक मात्र बनकर रह जाती है क्योंकि राजनीतिक सहभागिता के माध्यम से महिला सशक्तिकरण की बात जोर–शोर से उठाने वाले राजनीतिक दल 'स्वयं जीते जा सकने वाले' संसदीय क्षेत्रों से महिला उम्मीदवारों को खड़ा करने में एक स्पष्ट हिचकिचाहट दिखाते हैं।[9]

सम्भवतः यही कारण है कि संसद व राज्य विधान सभाओं में महिला आरक्षण बिल अभी भी लम्बित है। विभिन्न राजनीतिक दलों के पुरूष सदस्य यह समझ व सहन करने में स्वयं को असमर्थ पा रहे हैं कि सदन का एक–तिहाई हिस्सा महिलाओं का हो। लम्बे समय से लगभग पुरूष एकाधिकार वाले इस क्षेत्र में इतनी बड़ी संख्या में महिलाओं की हिस्सेदारी उनकी समझ से परे है। जबकि वस्तुतः 50 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व 33 प्रतिशत के ही करने की बात है। ग्राम पंचायतों में व स्थानीय निकायों में महिलाओं को प्राप्त भागीदारी अब धीरे–धीरे प्रतीकात्मक से वास्तविक सहभागिता का रूप लेती जा रही है। स्थानीय शासन में भागीदारी से इन महिलाओं में अब चेतना, अधिकार व दायित्वबोध जाग्रत हो रहा है तथा इस विकेन्द्रीकृत लोकतांत्रिक व्यवस्था में वे अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करा रही है।

सार्वजनिक मंचों पर कांग्रेस भाजपा और वामदल जहाँ इस विषय पर एक सुर अलापते दिखे, वहीं समाजवादी पार्टी और राष्ट्रीय जनता दल जैसे क्षेत्रीय दल अपना अलग राग अलापते है। क्षेत्रीय दल चाहते हैं कि संविधान में दिये गये पिछड़े वर्ग के आरक्षण के प्रावधान के अधीन ही महिलाओं को रिजर्वेशन दिया जाये। वहीं, राष्ट्रीय दल ऐसा नहीं चाहते थे। इस विषय पर महिला नेत्रियाँ भी मुखर नहीं है। महिलाओं के साथ इस विषय पर उनके दलों, विचारधारा और हितों के प्रति प्रतिबद्धता पहली प्राथमिकता थी।[10]

फिर भी सम्पूर्ण रूप से यह कहना सही नहीं होगा कि बीते कुछ महिला दशकों ने राजनीतिक दलों पर महिला समस्याओं के प्रति ध्यान देने हेतु दबाव डाला है। आज भी राजनीतिक दल महिलाओं को राजनीतिक सत्ता की समान भागीदारी के अवसर प्रदान करने में हिचकिचाहट दिखाते है। यद्यपि पूर्व की अपेक्षा वर्तमान समय में महिला राजनीति में व्यापक स्तर पर सहभागिता कर रही है, फिर भी यह पुरूषों की तुलना में अभी बहुत ही कम है, जिसका एक प्रमुख कारण राजनीतिक दलों की संकीर्ण मानसिकता है।[11]

73वाँ एवं 74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम को सुनिश्चित करने के साथ–साथ राजनीतिक शक्ति संरचना में उनकी भागीदारी में भी वृद्धि कर रहा है। इससे जो आशा की गयी थी कि यह अधिनियम सदियों से महिलाओं पर लगाये गये प्रतिबंधों को दूर करने तथा संसद एवं विधान सभाओं में उन्हें समान रूप से उत्तरदायित्व सम्भालने में प्रोत्साहित करेगा, उसे यह सफलतापूर्वक पूरा कर रहा है। आज स्थानीय प्रशासन निकायों में प्रतीकात्मक रूप से अँगूठा लगाने या हस्ताक्षर मात्र करने से प्रारम्भ हुयी यह सहभागिता अब धीरे–धीरे परिपक्व होकर प्रत्यक्ष रूप लेने लगी है तथा अधिक सकारात्मक तथ्य यह है कि इस सक्रियता को विस्तृत सामाजिक स्तर पर स्वीकार्यता भी प्राप्त हो रही है।[12]

उपरोक्त विश्लेषण के पश्चात यह स्पष्ट होता है कि आज भी पुरूषों के समान राजनीति में महिलाएं अपनी सशक्त सहभागिता सुनिश्चित नहीं कर पायी है जिसका एक प्रमुख कारण राजनीतिक दलों द्वारा महिला आरक्षण पर उनकी संकीर्ण मानसिकता है। यद्यपि आज महिलाएं देश के शीर्ष पदों पर शोभायमान है, परन्तु इनमें से अधिकांशतः अपनी सशक्त पारिवारिक पृष्ठभूमि के कारण राजनीति में है। बिना पारिवारिक व विशेष रूप से पति या पुरूष सदस्यों के सहयोग के महिलाओं के राजनीतिक जीवन में प्रवेश की सम्भावना लगभग शून्य होती है। राजनीति में उनका प्रवेश प्रायः बेटी या बहन के रूप में पारिवारिक विरासत को सम्भालने के लिये होता है। समाजीकरण की निश्चित प्रकार की प्रक्रिया तथा विविध सामाजिक दबावों के कारण औसत भारतीय महिला इन क्षेत्रों में स्थान प्राप्त करने में स्वयं को अक्षम महसूस करती है। साथ ही, राजनीति का अपराधीकरण एवं

अराजक तत्वों का राजनीति में बढ़ता महत्व भी ऐसे कारक है जो महिलाओं को राजनीतिक सहभागिता से रोकते हैं।

निष्कर्ष

भारत के 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन के कारण ग्राम पंचायतों एवं स्थानीय निकायों के लिए चुनी गयी महिलाओं की सहभागिता अब केवल प्रतीकात्मक नहीं रह गयी है, स्वयं की स्थिति अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति उनकी जागरूकता में निश्चित रूप से वृद्धि हुयी है। परन्तु अभी भी आवश्यकता इस बात की है कि राजनीतिक प्रक्रिया के इस निम्नतम स्तर पर निर्वाचित लाखों महिलाओं को एक–दूसरे से जोड़ने की, जिससे स्थानीय से विस्तृत राष्ट्रीय स्तर तक वे अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करा सकें। महिलाओं का राजनीतिक सशक्तिकरण स्वयं में एक उद्देश्य ही नहीं बल्कि असमानता पर आधारित व्यवस्था में प्रभावशाली परिवर्तन के लक्ष्य को प्राप्त करने का एक साधन भी माना जा सकता है। स्वयं को प्रभावित कर सकने वाली योजनाओं व नीतियों को अपने अनुरूप निर्मित करवाने के लिये महिलाओं को सत्ता के गलियारों में अपनी पैठ बनानी होगी और ऐसी शक्ति अर्जित करनी होगी कि वे स्वयं के सन्दर्भ में लिये जाने वो निर्णयों को प्रभावित कर सकें।

सन्दर्भ

1. *C.B. Macpherson : Democratic Theory : Essays in Retrieval, आक्सफोर्ड : क्लैरेन्डन प्रेस स्टैनफोर्ड, 1973, पृ0 89.*
2. *डॉ0 संगीता धल : ''भारत में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता एवं प्रतिनिधित्व का मुद्दा'', तपन बिस्वाल (सम्पा0): मानवाधिकार, जेन्डर एवं पर्यावरण, वीवा बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2008, पृ0 262।*
3. *कैरोल पेटमैन–द सेक्सुअल कांट्रैक्ट, कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी प्रेस, स्टैनफोर्ड, 1988, पृ0 11–40।*
4. *डॉ0 संगीता धल : ''भारत में महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता एवं प्रतिनिधित्व का मुद्दा'', तपन बिस्वाल (सम्पा0): मानवाधिकार, जेन्डर एवं पर्यावरण, वीवा बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2008, पृ0 259।*
5. *उपर्युक्त, पृ0 259।*
6. *जे0ए0 मिल की यह रचना 'महिलाओं की पराधीनता' (Subjection of Women) सन् 1869 में ब्रिटेन में प्रकाशित हुई थी।*
7. *कुरूक्षेत्र : मार्च, 2007, पृ0 27।*
8. *Laxmi Devi: Encyclopaedia of Women Development and Family Welfare Vol.-5, p. 37 & 38.*
9. *कुरूक्षेत्र, मार्च, 2007, पृ0 29।*
10. *अरिहन्त, समसामयिकी महासागर, मासिक पत्रिका, अरिहन्त मीडिया प्रमोटर्स, मेरठ, मार्च, 2009, पृ0 44 व 45।*
11. *Laxmi Devi : Encyclopaedia of Women Development and Family Welfare Vol.-5, p. 37 & 38*
12. *Susheela Kaushik: "Women in local self government in India: strategies and achievements" Regional work shop on strategies to increase women's participation in local government. Bangkok: 26-27 October, 1994.*